नये अंतरराष्ट्रीय पर्यवेक्षी ढांचे के अप्रत्याशित परिणाम : उभरते बाज़ार का परिप्रेक्ष्य*

एस.एस. मूंदडा

बान्जोर !

सुश्री एन्नी ले लोरियर आपके सुविचार के लिए धन्यवाद । मुझे प्रसन्नता है कि मैं बैंक-डे-फ्रांस (बीडीएफ) द्वारा आयोजित भारतीय रिज़र्व बैंक - बीडीएफ के इस संयुक्त सम्मेलन में प्रमुख वक्तव्य प्रस्तुत कर रहा हूँ । मैं अपनी बात बीडीएफ की इस गर्मजोशी, मैत्रीभाव और सौहार्द के प्रति धन्यवाद देते हुए करना चाहता हूँ। बैंक-डे-फ्रांस विश्व के प्राचीनतम बैंक में से एक है। इसकी स्थापना नेपोलियन बोनापार्टे ने जनवरी 1800 में की थी जिसका उद्देश्य क्रांतिकाल की घोर मंदी को देखते हुए नई आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देना था। आज हम नई अंतरराष्ट्रीय पर्यवेक्षी संरचना के परिणामों पर चर्चा करने बैठे हैं, ठीक इसी प्रकार दो शताब्दी से अधिक समय पूर्व ऐसी ही परिस्थितियों पर आश्चर्यजनक तरीके से चर्चा की गई थी। यहां तक कि आज भी विश्व की अर्थव्यवस्था वित्तीय संकट के दौरान आउटपुट में हुई कमी से बाहर निकलने के लिए लगातार संघर्ष कर रही है, जिसके लिए यह कहावत सत्य सिद्ध हो रही है 'जितना अधिक चीजें परिवर्तित होती हैं, उतना अधिक ही वे समान रह जाती हैं।' हालांकि मानक निर्धारित करने वाली संस्थाएं ऐसे विभिन्न रेगुलेटरी सुधार के बारे में ज़ोर देती रही हैं जो वित्तीय प्रणाली को उस दलदल से बाहर निकाले जिसमें वह संकट आने से पूर्व चली गई गई थी, ऐसी स्थिति में हम यह समझते हैं कि इस बात पर चर्चा करना श्रेयस्कर होगा कि नये अंतरराष्ट्रीय रेगुलेटरी/पर्यवेक्षी उपायों के अप्रत्याशित परिणाम क्या होंगे और हमें ऐसे तरीके ढूंढने होंगे जो उससे होने वाले अत्यधिक प्रतिकूल प्रभावों को रोक सकें। आज मैं अपने संबोधन में अपने विचार उभरते बाज़ारों के परिप्रेक्ष्य में रखना चाहूंगा। मैं संक्षेप में नये पर्यवेक्षी ढांचे की उत्पत्ति और उसके संदर्भ के बारे में बात करूंगा, उसके बाद इस बात पर बहसे होगी कि रेगुलेटरी नियंत्रण को कितना कठोर बनाया जा सकता है और उसकी सीमाएं क्या हैं और उससे अर्थव्यवस्था पर कितना भार पड़ता है। मैं उसके पश्चात नये पर्यवेक्षी ढांचे के अप्रत्याशित परिणामों को सीमित रखने के भावी तरीकों पर अपना नज़रिया प्रस्तुत करूंगा। लेकिन, विषय पर आने से पहले मैं कुछ समय इस बात पर लेना चाहूंगा कि उन्नत और भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं द्वारा किन विरोधाभासी वास्तविकताओं का सामना किया जा रहा है जो अन्यथा इस 'अंतरसंबद्ध' विश्व में घटित हो रही हैं।

2. आइए इस बात का सामना करें - यह दुनिया भिन्न गति से आगे बढ़ती है। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं और उभरती तथा विकासशील बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं की ज़मीनी सच्चाइयां अलग-अलग हैं। जहां कई उन्नत अर्थव्यवस्थाएं, खासतौर से यूरोप अपस्फीति और रूकी हुई अथवा गिरती हुई विकास की समस्या में फंस गया है, अधिकांश उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाएं (ईएमडीई) मुद्रास्फीति की समस्याओं से जूझ रही हैं और अलबत्ता धीमी विकास दर से गुज़र रही हैं। भारत जैसी ईएमडीई को बुनियादी सुविधा क्षेत्र में निरंतर बड़े निवेश की ज़रूरत है क्योंकि विश्व के अन्य भाग की तुलना में इसके पास वास्तविक दर से प्रतिफल कमाने की क्षमता है। एक अन्य विशेषता जो भारत को उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न करती है वह है वित्तीय प्रणाली में बैंकिंग क्षेत्र का वर्चस्व। अन्य बातों के होते हुए भी दिए गए कुल ऋण में फर्मों और गृहस्थों को दिए गए बैंक ऋण का हिस्सा 90 प्रतिशत से अधिक था जो फ्रांस जैसी उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में (जिसका शेयर लगभग 50 प्रतिशत) तथा अमरीका (लगभग 30 प्रतिशत)[1] है, की तुलना में कहीं अधिक बना रहा है। पिछले दशक में गृहस्थों को दिए गए बैंक वित्त में अत्यधिक वृद्धि हुई है, किंतु अभी भी गृहस्थों के संबंध में तुलनपत्र में स्थिति उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में कम लीवरेज्ड बनी हुई है । सरकारी घाटे को धन देने का सबसे ज्यादा स्रोत बैंक रहे हैं और सरकारी प्रतिभूतियों में जो निवेश हुआ है वह कुल बाज़ार उधार के आधे से अधिक रहा है। इस प्रकार से भारतीय वित्तीय प्रणाली में बैंकों

---

* श्री एस.एस.मूंदडा, उप गवर्नर, भा.रि.बैंक द्वारा 20 जुलाई 2015 को पेरिस में बैंक डे फ्रांस - भा.रि.बैं. के संयुक्त सम्मेलन में दिया गया प्रमुख वक्तव्य। डॉ. मृदुल सागर, श्री अय्यप्पन नायर और श्री संजीव प्रकाश की सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई है।

[1] आर्थिक सर्वेक्षण 2014-15 : ऋण, संरचना और दुगुना वित्तीय निरोधकारी उपायः बैंकिंग क्षेत्र की तफतीश : http://indiabudget.nic.in/es2014-15/echapvol1-05.pdf

के वर्चस्व को देखते हुए विश्व के वित्तीय संकट के मद्देनज़र जो सुधार के उपाय किए गए उनसे होने वाले अप्रत्याशित परिणामों का परीक्षण किया जाना महत्त्वपूर्ण है ताकि विकास को बनाए रखने में बैंकों द्वारा धन उपलब्ध कराने की क्षमता का निर्धारण किया जा सके।

सुधार की उत्पत्ति

3. नयी संरचना की ज़रूरत इसलिए पड़ी क्योंकि विश्व के वित्तीय संकट के समय जो रेगुलेटरी ढांचा था उसमें दरार नज़र आने लगी थी। आमतौर पर यह माना गया था कि वर्तमान रेगुलेटरी शासन (i) अनियंत्रित वित्तीय नवोन्मेष से होनेवाली अप्रत्याशित घटनाओं को विचार में नहीं ले पाया था, (ii) वित्तीय प्रणाली की पूर्व-चक्रीयता को संचालित नहीं कर पाया, (iii) इस लक्षण पर ध्यान नहीं दे पाया कि 'बड़े भी फेल नहीं हो सकते' (iv) आभासी बैंकिंग में तीव्र वृद्धि को रोकने में असफल रहा तथा (v) आस्ति के मूल्यों को बढ़ने दिया गया तथा ऋण में अत्यधिक तेजी पैदा हुई और उसकी वजह से बैंक ध्वस्त हो गए।

4. इस प्रकार, विश्व स्तर पर अनेक पहल की गई और उन्हें कई बहुराष्ट्रीय संरचना की सहायता भी प्रदान की गई जैसे - जी-20, अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक तथा वित्तीय स्थिरता बोर्ड। अनेक राष्ट्रों में साथ ही साथ राष्ट्रीय विधिक परिवर्तन तथा रेगुलेटरी सुधार भी किए गए। अमरीका में डाड-फ्रैंक अधिनियम में वॉकर-नियम जोड़े गए, वाइकर्स प्रस्ताव से इंग्लैंड में बैंकिंग सुधार अधिनियम लाया गया, लीकनेन रिपोर्ट ने यूरोपियन संघ में बैंकिंग यूनियन को आकार प्रदान करने में मदद की तथा फ्रांस द्वारा जो पहल की गई उससे उधार गतिविधियों तथा फुटकर वित्तीय सेवाओं को अलग-अलग करते हुए मालिकाना कारोबारी गतिविधियों को सुरक्षात्मक घेरा प्रदान किया और अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग का चेहरा बदल गया। मैंने अभी-अभी जिन पहल का उल्लेख किया है वे पूरे विश्व में वित्तीय प्रणाली के निर्माण के लिए हैं जो न केवल विकास को बढ़ावा देंगी बल्कि संकट-रोधी के रूप में कार्य करेंगी।

रेगुलेटरी कड़ाई के परिणाम : कुछ इरादी, कुछ गैर-इरादी

5. एक सुरक्षित वित्तीय प्रणाली के उद्देश्यों के बारे में शायद ही कोई सवाल करे। लेकिन अफसोस इस बात का है कि सुरक्षात्मक उपायों की भी अपनी लागत होती है। इसके लिए तालमेल की स्थिति प्राप्त करनी होती है और यह जानना महत्त्वपूर्ण होता है कि तालमेल की इष्टतम स्थिति क्या होती है। दुर्भाग्यवश, हमारे पास सिद्धांत रूप में ऐसा कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है जिसे व्यवहार में लागू किया जा सके।

सुधार के इरादी परिणाम

6. बैंकों के लिए नये रेगुलेटरी और पर्यवेक्षी संरचना के प्रमुख तत्व हैं बासेल III पूंजीगत नुस्खे, चलनिधि कवरेज अनुपात, निवल स्थिर निधीयन अनुपात जिसमें हम शीघ्र ही कुल हानि वहन क्षमता को भी जोड़ने वाले हैं। इस समय रेगुलेटरी पूंजी की गणना के लिए मानकीकृत, गैर-मॉडलीकृत दृष्टिकोण को बेहतर बनाने पर कार्य किया जा रहा है ताकि बैंकों के रेगुलेटरी पूंजी अनुपात की अत्यधिक भिन्नता की समस्या को सुलझाया जा सके। वित्तीय प्रणाली पर आभासी बैंकिंग क्षेत्र के प्रभाव को दूर करने के बारे में चर्चा तथा स्पष्ट कानूनी ढांचे द्वारा समर्थित एक बेहतर समाधान का वातावरण स्थापित करने की प्रक्रिया अपने अंतिम चरण में है। बाज़ार रेगुलेशन के अन्य पहलू भी हैं जैसे सीसीपी की जोखिम प्रबंधन प्रथा में सुधार लाना तथा उनके ऋण एवं चलनिधि संसाधनों की पर्याप्तता सुनिश्चित करना और वसूली प्रक्रिया, ओटीसी व्युत्पन्नी का विनियमन आदि। इन सब उपायों का इरादी परिणाम होगा चलनिधि तथा निधीयन की बाधाओं को कम करना जिसका सामना बैंक कठोर चलनिधि एवं विकास की धीमी दर के दौर में करते हैं। इन उपायों से दबाव की स्थिति में वित्तीय संस्थाओं की ज़मानत लेने के लिए करदाताओं के धन पर निर्भरता भी कम होगी।

7. बासेल III की अपेक्षा न केवल दबाव के समय प्रत्येक बैंकिंग संस्था की समुत्थानशक्ति को बढ़ाता है बल्कि संपूर्ण प्रणाली के जोखिमों से उत्पन्न होने वाले आघातों तथा एक समयावधि में इन जोखिमों की प्रतिचक्रीय वृद्धि को समाहित कर लेने की क्षमता को बेहतर बनाता है। इस पैकेज का उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ बैंकों के जोखिम प्रबंधन, गवर्नेंस, पारदर्शिता तथा प्रकटीकरण मानकों को बेहतर बनाना है और इस प्रकार जमाकर्ताओं, निवेशकों एवं प्रतिपक्षों को बेहतर तौर पर सूचित निर्णय लेने में सक्षम बनाता है। रेगुलेटरी सुधार के उपायों से अपेक्षित परिणाम के बारे में दर्शक बेहतर जानते हैं जिन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

सुधार के गैर-इरादी परिणाम

8. यह स्वाभाविक है कि नया रेगुलेटरी और पर्यवेक्षी ढांचा जो हम अब लागू कर रहे हैं उसके कुछ अप्रत्याशित परिणाम होंगे और उनसे कुछ अतिरिक्त आर्थिक लागत आ सकती है। इसमें निहित तनाव यह

है कि वित्तीय स्थिरता तथा आर्थिक वृद्धि के दरम्यान प्रभाव मूल्यांकन के बावजूद जो तालमेल बना हुआ है वह विपरीत परिणाम प्रस्तुत करता है। मैं इनमें से कुछ मुद्दों पर बात करूंगा, खासतौर से उनपर जो उभरते बाज़ारों पर प्रभाव डाल रहे हैं।

i) जीडीपी वृद्धि पर प्रभाव

हालांकि, रेगुलेटरी सुधार के आर्थिक प्रभाव का एक-पक्षीय मूल्यांकन मुश्किल है, विभिन्न अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा किए गए अध्ययन विभिन्न प्रकार के प्रभाव दर्शाते हैं। बीसीबीएस (2010) का अनुमान था कि बासेल III पूंजी और चलनिधि प्रभार यदि आठ वर्ष के संक्रमण काल में फैला दिए जाएं तो धीरे-धीरे राष्ट्रीय स्तर की आर्थिक गतिविधि कुल मिलाकर 0.6 प्रतिशत या 0.08 प्रतिशत वार्षिक रूप से कम हो जाएगी। बीआईएस 2010 की एमएजी ने 17 औद्योगिक राष्ट्रों को कवर किया है और इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि 4 वर्षों में पूंजी में 1 प्रतिशत की वृद्धि के जवाब में उधार का स्प्रेड वर्ष 2015 तक 15 आधार अंक बढ़ जाएगा। आइआइएफ (2010) का यूरोप, अमरीका और जापान के बारे में मत है कि पूंजी और चलनिधि के माध्यम से 2 प्रतिशत की वृद्धि उधार के स्प्रेड को 132 आधार अंक तक बढ़ा देगी। आइआइएफ द्वारा किए गए एक अन्य अध्ययन (2012-19) में यह बताया गया है कि यूरोप, जापान और अमरीका की वार्षिक वृद्धि दर पर क्रमशः 0.40 प्रतिशत, 0.30 प्रतिशत और 0.10 प्रतिशत का ऋणात्मक प्रभाव पड़ेगा। यद्यपि इसके जो परिणाम होंगे उसका कारण अपनाई जाने वाली पद्धतियों में होने वाला अंतर होगा, फिर भी प्रभाव की दिशा चाहे जो हो, स्पष्ट है कि वह होकर रहेगा। अर्थव्यवस्थाओं को इस तथ्य को मानना ही होगा कि नये रेगुलेशनों का आर्थिक वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

इस बात की संभावना है कि (ए)अधिक पूंजी की आवश्यकता, खासतौर से टियर 1 पूंजी का कॉमन इक्विटी तत्व तथा पूंजी बफर और (बी) न्यूनतम चलनिधि की आवश्यकता दोनों मिलकर बैंकों की इक्विटी के प्रतिफल को कम कर सकती हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि बैंक इस स्थिति से कैसे निपटेंगे लेकिन जो विकल्प हैं वे इस प्रकार हैं : खुदरा जमाराशियों पर दरों में कमी करना, स्टाफ को क्षतिपूर्ति कम करना, और उत्पादों पर मार्जिन बढ़ाना। खुदरा जमाराशियों पर दरों में कमी करने से दो परिणाम निकल सकते हैं। एक, इससे गैर-मध्यस्थता बढ़ेगी। दूसरे, भारत जैसी अर्थव्यवस्था में जहां बैंकों का वर्चस्व है वहां भी गृहस्थों की समग्र बचत दर को प्रभावित कर सकता है। वहीं पर, सकल राष्ट्रीय उपयोज्य आय की तुलना में सकल बचत की दर 2009-10 के तकरीबन 34 प्रतिशत से घटकर 2013-14 में 30 प्रतिशत हो चुकी है, यह वृद्धि तथा चालू खाता अंतर पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। इसके अलावा, बैंकों से अत्यधिक कड़ाई से पूंजी की अपेक्षा के परिणामस्वरूप उधार देने की बढ़ती लागत अथवा उधार की मात्रा कम होने से आर्थिक वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

ii) बुनियादी सुविधाओं के लिए वित्त पर प्रभाव

भारत में आबादी बढ़ रही है और अभी-अभी इसने वह सीमा पार की है जहां से वह विश्व अर्थव्यवस्था में उच्च वृद्धि की दर बनाए रख सकती है और विश्व की वृद्धि के प्रति इंजन की भूमिका अदा कर सकता है। लेकिन इसे संभव बनाने के लिए बुनियादी सुविधाओं में अत्यधिक निवेश की आवश्यकता है। भारतीय उद्योग संघ (सीआइआइ) की रिपोर्ट के अनुसार बुनियादी क्षेत्र के लिए भारत में अगले पांच वर्ष 2014-15 से 2018-19 के दौरान चालू बाज़ार मूल्य पर कुल 64 ट्रिलियन रु.(1,071 बिलियन अमरीकी डालर) की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त, अगले पांच वर्षों तक 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से औसत वृद्धि दर प्राप्त करने के लिए चालू बाजार मूल्य पर 280 ट्रिलियन रु.(4667 बिलियन अमरीकी डालर) के निवेश की ज़रूरत होगी। यह ऐसी संख्या है जिसे हासिल तब तक नहीं किया जा सकता यदि बैंकों पर बफर के लिए कड़ाई की गई और बैंकों का वित्तपोषण सीमित हो जाता है। इसलिए स्पष्ट रूप से रेगुलेटरी सख्ती की एक सीमा है, खास तौर से ऐसी स्थिति में जब उभरते बाज़ार प्रति व्यक्ति आय को रूपांतरित करने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

iii) एमएसएमई को दिए जाने वाले वित्त पर प्रभाव

उभरते बाज़ारों में एमएसएमई की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है और खासतौर से भारत में। एमएसएमई का देश की जीडीपी में लगभग 8 प्रतिशत योगदान है, विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादन में 45 प्रतिशत और निर्यात में 40 प्रतिशत योगदान

है। एमएसएमई क्षेत्र में लगभग 47 मिलियन उद्यम है और पूरे देश में 106 मिलियन लोगों को रोज़गार मुहैया करा रहे हैं। ये छोटे उद्यम अपनी ऋण संबंधी ज़रूरतों के लिए काफी हद तक बैंक-वित्त पर निर्भर हैं।

चूंकि एसएमई का न तो लंबा ऋण का कोई इतिहास रहा है और न ही इसकी कोई बाहरी क्रेडिट रेटिंग रही है, इसलिए वे अत्यधिक जोखिम की स्थिति में रहते हैं और बैंकों के लिए ज़रूरी होता है कि वे इन एक्सपोजर्स के लिए अधिक पूंजी जमा करके रखें। यदि बैंक को मजबूरन अपनी पूंजी सुरक्षित करनी पड़ी या अपनी जोखिम भारित परिसंपत्तियों को कम करना पड़ा तो ऐसी स्थिति में एमएसएमई के उधारकर्ताओं को सबसे पहले दरकिनार किए जाने की संभावना है।

iv) चलनिधि नुस्खे का प्रभाव

संकट से एक प्रमुख बात यह सीखने को मिली है कि चलनिधि भी सक्रिय समतुल्यता स्थिति के साथ-साथ महत्वपूर्ण है, चलनिधि समस्या बहुत शीघ्र दिवालिया की स्थिति में बदल सकती है। इसलिए एसएसबी ने प्रत्येक फर्म के चलनिधि संबंधी जोखिम प्रोफाइल को ध्यानपूर्वक सुधारने पर ज़ोर दिया है। किंतु ऐसा नहीं हो सकता कि रेगुलेशंस के अलग-अलग कार्यक्षेत्र में विभिन्न मात्रा में अप्रत्याशित परिणाम न हों। थोड़ा बड़े स्तर पर देखें तो एलसीआर मानदंडों को पूरा करने के लिए बैंकों के लिए ज़रूरी होगा कि वे और अधिक दीर्घकालीन देयताएं तथा अल्पकालिन परिसंपत्तियां बनाए रखें। इसके साथही एनएसएफआर मानदंडों से बैंकों की बाज़ार बनाने की क्षमता कम होगी। इन दोनों का बैंकों की मार्जिन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

भारत में, बैंकों की यह संवैधानिक अपेक्षा है कि वे अपनी देयताओं (एसएलआर) में कुछ प्रतिशत सरकारी प्रतिभूतियों में रखें, अर्थात राज्य सरकार प्रतिभूतियों एवं अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में। एसएलआर प्रतिभूतियां 'उच्च गुणवत्ता चलनिधि परिसंपत्ति (एचक्यूएलए)' के स्तर 1 की समस्त विशेषताओं को पूरा करती हैं और इस प्रकार अलग से अतिरिक्त एचक्यूएलए धारित करने का मौजूदा आग्रह भारत में काम कर रहे बैंकों के लिए अत्यधिक महंगा पड़ेगा। इसी प्रकार, जन साधारण की अत्यधिक मात्रा में जमाराशि को भी ध्यान में लेना होगा और भारत सहित ईएमडीई के अन्य कार्यक्षेत्रों में उनपर दी जा रही बहुत कम दरों पर गौर करना होगा। अतः कुल मिलाकर, रेगुलेटरी प्राधिकारियों को उनके संबंधित अधिकार क्षेत्रों में चलनिधि जोखिम ढांचे को कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रीय विवेक को उपयुक्त सीमा तक ध्यान में रखने का यह एक संगीन मामला बनता है।

v) टीएलएसी का प्रभाव

टीएलएसी ने भारत जैसे उभरते बाज़ारों के लिए एक नया आयाम पैदा कर दिया है, जबकि यह प्रस्ताव अनिवार्य रूप से जी-सिब के लिए था जिन्होंने उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में टीबीटीएफ का आयाम प्राप्त कर लिया था। मैं इसके संभावित प्रभावों के बारे में संक्षेप में बात करना चाहूंगा।

जैसाकि मैंने पूर्व में उल्लेख किया है कि ईएमडीई में बैंकिंग प्रणाली की विशेषताएं उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से काफी भिन्न हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं में विकसित होने की क्षमता है और विकास को आगे बढ़ाने के लिए ऋण की आपूर्ति की ज़रूरत है। ये अर्थव्यवस्थाएं अनेक जी-सिब के लिए मेज़बान की भूमिका निभाती हैं और इस प्रकार उन्हें उसी बाज़ार में गैर-जी सिब से स्पर्धा करनी पड़ती है। ऐसे में स्पिलओवर जैसा प्रभाव पड़ने की काफी संभावना है और बाज़ार गैर-जी सिब को भी जी-सीब की तरह उच्च पूंजी स्तर बनाए रखने के लिए बाध्य करेगा। इस बात की भी संभावना है ईएमडीई में विद्यमान जी-सिब अपने कार्यों को कम कर दें। इनमें से कोई भी बातें ऋण की आपूर्ति को प्रभावित कर सकती हैं और इन अर्थव्यवस्थाओं में विकास की संभावनाओं के प्रति नकारात्मक रूप से कार्य करेंगी।

मांग पक्ष की ओर, टीएलएसी अनुपालक लिखतों के लिए मुश्किल से कोई बाज़ार होगा। हमारे बैंकों को बासेल III अनुपालक बनने के लिए पूंजीगत लिखतों जैसे अतिरिक्त टियर-I के लिए पूंजी जुटाने में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यदि बैंक इस पूंजी को जुटाने में विदेश की ओर रूख करेंगे तो उन्हें इसकी लागत अपेक्षाकृत अधिक होगी क्योंकि इनकी सरकारी रेटिंग तुलनात्मक रूप से कम है और मांग के संबंध में जी-सिब से स्पर्धा करना पड़ेगा।

तैयारी के संबंध में रेगुलेशन्स : सरकारी बांडों पर जोखिम भार

9. जीएफसी के उपरांत लागू की गई रेगुलेटरी सुधार की कार्यसूची अभी अपने अंतिम बिंदु तक नहीं पहुंच पाई है। प्रायः एक नया खतरा पैदा हो जाता है और जोखिमों को दूर करने के लिए कदम उठाए जाते हैं। इसमें से एक घटना यह है कि सरकारी बांड धारिता को जोखिम भार प्रदान करने की संभावना। हालांकि इसके पक्ष में बहस करना मुश्किल है, खासतौर से अभी-अभी विगत की घटनाओं के बाद, इसलिए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पूरे विश्व में स्थिति समान नहीं है। भारत जैसे राष्ट्र स्थायित्व वाले क्षेत्र रहे हैं और इस बात पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है कि सरकारी चूक की संभावना हो सकती है। इन परिस्थितियों में, भारत जैसे देश में सरकारी बांड पर जोखिम भार लगाने का अर्थ है कि अपनी गाढ़ी पूंजी को खा लेना जिसका विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार की संभावनाएं तभी सुदृढ़ हो सकती है जब इस संबंध में पूरे राष्ट्र का विवेक हासिल किया जाए।

राष्ट्रीय विवेक का संदर्भ

10. मेरे विचार से, एक बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष जिसपर विचार किया जाना जरूरी है वह यह है कि विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय बाजारों के विकास की क्या स्थिति है। भारत में बैंकों के पास अपेक्षाकृत साधारण कारोबारी मॉडेल होते हैं जिनमें सामान्य उत्पादों की पेशकश की जाती है। भारत में पूंजी से संबंधित रेगुलेटरी स्थिति विश्व के मानकों से कहीं अधिक कठोर रही है। न केवल सीएआर स्तर को ऊंचा रखा गया है बल्कि अनेक श्रेणी की परिसंपत्तियों को दिए गए जोखिम भार भी बहुत अधिक हैं। अभी से यह हालत है जब भारतीय बैंक मानकीकृत दृष्टिकोण को अपनाने में लगे हैं। 'लिफाफे के पीछे' का आकलन यह दर्शाता है कि जब हम बीसीबीएस के निर्धारण जो 200 आधार अंक है, की तुलना करते हैं तो पाते हैं कि भारतीय बैंकों पर जोखिम भार का प्रभाव बहुत अधिक है।

आवश्यक समष्टि-विवेकपूर्ण उपाय

11. जहां मैंने इस बात का पक्ष लिया है कि भारत जैसे ईएमडीई में जहां नाप-तौल का रेगुलेटरी सुधार लाने के लिए विभेदीकृत, सावधानीपूर्ण तथा धीरे-धीरे लाए जाने का दृष्टिकोण अपनाया जाए वहीं कई प्रकार की दबाव डालने वाली चुनौतियां भी हैं जिनका सामना बैंक कर रहे हैं। हम इन चुनौतियों का सामना करने के लिए उपयुक्त समष्टि-विवेकपूर्ण रेगुलेशंस लाने की आवश्यकता के बारे में सतर्क है। एकल/समूह उधारकर्ता की उधार-सीमा को कम करना, परिसंपत्ति संबंधी अर्हता मानदंडों को सुदृढ़ बनाना, कार्पोरेट गवर्नेंस मानकों को खासतौर से सरकारी क्षेत्र के बैंकों में बेहतर बनाना, बैंकरप्सी ढांचे पर कार्य करना, कारपोरेट तुलनपत्र की डिलीवरेजिंग तथा असुरक्षित विदेशी एक्सपोज़र का स्तर कम करना आदि कुछ ऐसे मुद्दों पर हम कार्य कर रहे हैं जिन्हें शीघ्र पूरा किए जाने की ज़रूरत है।

अप्रत्याशित परिणामों को सीमित करना

12. नये रेगुलेटरी सुधार की कार्यसूची के प्रभाव पर नज़र डालने के बाद यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि उनसे होने वाले अप्रत्याशित परिणामों को सीमित रखने के 'तैरना न आए और पानी में फेंक दिया जाए' की स्थिति अपनाए बिना तरीकों पर विचार किया जाए। इस नये ढांचे के अवयवों की आवश्यकता वैश्विक बैंकिंग प्रणाली के लिए है। यदि हमने विश्व के वित्तीय संकट से सबक हासिल किया है और इस संबंध में फीडबैक यूरो क्षेत्र में बैंकिंग तथा सरकारी ऋण के बीच संबंध स्पष्ट करता है, तो ऐसी स्थिति में हमें एक नये शासन की ओर रुख करता होगा। अभी भी हमें विकास तथा वित्तीय समावेशन को आगे बढ़ाने के प्रयास की ज़रूरत है। हम उन्हीं पंख को काट नहीं सकते जिसकी सहायता से बैंकिंग उड़ान भरती है, अपितु हमें उसकी गति को नियंत्रित करने की आवश्यकता है ताकि वह न तो दुर्घटनाग्रस्त हो और न ही स्वयं को क्षति पहुंचा सके। मैं यह भी उल्लेख करना चाहूँगा कि रेगुलेटरी सुधार की प्रक्रिया कितनी पूरी हुई है इसपर अभी भी संदेह बना हुआ है और इस संदेह को दूर करने की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए।

13. हमें स्वयं को पूरी तरह परिवर्तन के लिए तैयार रखना होगा; और यह बात बैंकों तथा रेगुलेटर्स के लिए भी लागू है। उदाहरण के लिए यदि बैंक का इक्विटी पर प्रतिफल घट जाता है तो बैंक को चाहिए कि वह तत्परता से लागतें कम करे तथा अल्पकालिक जोखिम की स्थिति को रोकने के लिए अत्यधिक बोनस देने को सीमित करे। यदि कमज़ोर बैंक भीड़ से बाहर हो जाते हैं तो रेगुलेटर और बैंक दोनों को चाहिए कि वे विलयन और अभिग्रहण के लिए सहज संरचना प्रदान करने के लिए कदम उठाएं।

समापन

14. अंत में, मैं नई अंतरराष्ट्रीय रेगुलेटरी सुधार प्रक्रिया के लिए तीन-स्तरीय दृष्टिकोण अपनाने पर ज़ोर देना चाहूँगा।

क) बारीकी से पर्यवेक्षण पर फोकस करना : संकट के विश्लेषण से पता चलता है कि सभी कार्यक्षेत्रों में संयुक्त रूप से प्रभावी पर्यवेक्षण का अभाव था। अधिक गहन और प्रभावी पर्यवेक्षण का

तत्व पर्यवेक्षी एवं रेगुलेटरी कार्यसूची का अहम भाग बना रहना चाहिए। संस्थाओं का गहनता से पर्यवेक्षण करने से सर्वोत्तम प्रथाओं को लागू करने में सहायता मिलती है और इससे पहले की जोखिम भीषण रूप ले लें उनकी पहले ही पहचान हो जाती है। जहां रेगुलेशन कार्यक्षेत्र विशेष के लिए होना चाहिए वहीं पर्यवेक्षी टूल्स युनिवर्सल होने चाहिए। पर्यवेक्षकों को लगातार बैंक की जोखिम प्रबंधन संरचना पर निगाह रखनी चाहिए तथा जोखिम गवर्नेंस ढांचे को देखना चाहिए तथा कड़ाई से जोखिम विश्लेषण करते हुए कमज़ोरियों का प्रारंभ में ही पहचान लेना चाहिए। उन्हें बोर्ड तथा वरिष्ठ प्रबंधन के साथ सतत रूप से संपर्क में रहना चाहिए और कारपोरेट गवर्नेंस सहित अनुपालन एवं आंतरिक लेखा-परीक्षा जैसे नियंत्रण-कार्यों का गहनता से पर्यवेक्षण किया जाए।

ख) अधिकतम राष्ट्रीय विवेक : हालांकि हम इस बात के प्रति सचेत हैं कि विवाचन से परहेज करते हुए युनिवर्सल रेगुलेटरी ढांचा अपनाएं, लेकिन यह ज़रूरी है कि पर्यवेक्षीय प्राधिकारी काफी हद तक राष्ट्रीय विवेक को स्थान दें। वित्तीय स्थिरता बोर्ड की नवंबर 2014 की रिपोर्ट 'ईएमडीई के संबंध में सहमत रेगुलेटरी सुधार के प्रभावों की निगरानी में अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख किया गया है कि ईएमडीई के लिए आवश्यक है कि वे अंतरराष्ट्रीय नीति के ढांचे में उपलब्ध लचीलेपन का उपयुक्त रूप से इस्तेमाल जारी रखें (उदाहरण के लिए आब्जर्वेशन और अवधि के चरण का इस्तेमाल, पैरामीटर में संतुलन, प्रभाव का मूल्यांकन तथा राष्ट्रीय विवेक का इस्तेमाल और समानुपातिकता का उपयोग)। हालांकि अंतरराष्ट्रीय रेगुलेशन के अंतर्गत राष्ट्रीय विवेक की अवधारणा अत्यंत संकीर्ण है।

अंतरराष्ट्रीय मानक निर्धारक निकायों को यह ध्यान रखना होगा कि संबंधित रेगुलेटरी और पर्यवेक्षी निकायों को जिस प्रकार का राजनैतिक अधिदेश प्राप्त होता है वह कई बार अंतरराष्ट्रीय रूप से सहमत सुधार उपायों के अनुरूप नहीं होता है। इस संबंध में बासेल III के कार्यान्वयन के बासेल रेगुलेटरी अनुरूपता मूल्यांकन के संबंध में यूरोपियन आयोग का कथन देखा जा सकता है। आयोग ने यह लिखा है कि बैंकों के आकार की भिन्नता, जटिलता तथा कानूनी स्वरूप को देखते हुए यह ज़रूरी है कि पर्यवेक्षकों को अतिरिक्त लचीलापन प्रदान किया जाए ताकि वे स्थानीय विशिष्टताओं के अनुसार निर्धारण कर सकें। यह प्रतिक्रिया बीसीबीएस द्वारा यूरोपियन यूनियन तथा विदेश दोनों में स्थित ग्राहकों के लिए एसएमई एक्सपोज़र पर रियायती जोखिम भार डाले जाने के संबंध में दिए गए निष्कर्षों पर व्यक्त की गई है।

अतः, जैसाकि मैंने पहले चर्चा की है, चूंकि प्रत्येक क्षेत्र अपने आर्थिक तथा राजनैतिक विकास के लिए भिन्न-भिन्न चरणों में है, इसलिए पर्यवेक्षीय प्राधिकारियों को अधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए ताकि वे अधिकारक्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप रेगुलेशंस को ढाल सकें।

ग) लंबे समय तक नपा-तुला अंदाज : ईएमडीई की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अत्यधिक लचीलापन एवं विवेकपूर्ण रियायत प्रदान करने के अलावा, यह महत्वपूर्ण है कि सुधार-कार्यसूची के कार्यान्वयन को एक लंबे समय तक ले जाया जाना चाहिए। इससे रेगुलेटर्स वित्तीय प्रणाली को, खासतौर से बैंकिंग प्रणाली को कठोर उपायों के प्रति तैयार कर सकेंगे।

उपर्युक्त चर्चा के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं और यह मैदान ऐसे दो अधिकारक्षेत्र के रेगुलेटरों के लिए चर्चा करने हेतु छोड़ रहा हूँ जिनकी बैंकिंग क्षेत्र में कार्य करने की महान परंपरा रही है।

मैं सम्मेलन की सफलता की कामना करता हूँ।

मरसी !